पञ्चम् अध्याय

5. देवेश ठाकुर के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय राजनीतिक यथार्थ के विविध आयाम

आज के मानव की नियति को शासित करने वाली प्रमुखत: दो शक्तियाँ हैं - राजनीति और विज्ञान । आज आध्यात्मिकता और धार्मिक आस्था के लुप्त होने से आज का मनुष्य यदि एक ओर तर्कशील बना हुआ है तो दूसरी ओर राजनीति उसके दैनिक जीवन को नियमित और परिचालित करने वाली शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुई है । यही कारण है कि वर्तमान जीवन को रूपायित करने वाली आज की रचना का सीधा सम्बन्ध है । प्रगतिवाद से पूर्व का हिन्दी साहित्य राजनीति से लगभग कटा हुआ है ।[1]

दृष्टि सम्पन्न रचनाकार अपने समय के समाज और जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होता है । उसका संवेदनशील हृदय अपने परिवेश की प्रत्येक घटना से झंकृत हो उठता है । अत: जीवन को प्रभावित करने वाली प्रत्येक घटना उसकी रचनाओं में उभरती है । वर्तमान जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला तत्त्व राजनीति और शासन-तन्त्र है । देवेश ठाकुर ने भी अपनी पूरा-सापेक्ष रचनाधर्मिता के तहत आजादी के बाद की हर राजनीतिक हलचल को किसी-न-किसी रूप में मध्यमवर्ग से जोड़कर रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है। उनके उपन्यासों में एक तरफ जहाँ समकालीन राजनीति की विसंगतियाँ प्रकट हुई हैं, वहाँ उन्होंने अपना राजनीतिक चिंतन भी प्रस्तुत किया है ।

5.1 राजनीति में भ्रष्टता का चित्रण

देवेश ठाकुर ने आजादी के बाद की राजनीतिक स्थितियों पर अपनी बेबाक राय अनेक स्थलों पर प्रस्तुत की है । इनके विचारों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि आजादी के लिए संघर्ष करते समय लोगों के मन में स्वतन्त्र

---

1. डॉ० पुष्पा रानी, आधुनिक रामकाव्य : पुनर्मूल्यांकन, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण-2002, पृ० 222

भारत की जो एक तस्वीर बनी थी, वह अधूरी रह गई । राजनीतिक आजादी मिलने के बाद जिस सामान्य व्यक्ति जीवन की बेहतरी की हमने कल्पना की थी, वह कल्पना चरितार्थ नहीं हुई । इसके विपरित स्वार्थ, छल-कपट और छद्म राजनीतिक कूटनीतियों से पूरा राजनीतिक माहौल गंदला गया जिसका सबसे अधिक प्रभाव मध्यमवर्ग पर पड़ा । इन स्थितियों का जिक्र करते हुए देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'जनगाथा' में लिखा है - "मुझे लगता है कि देश का ही कबाड़ा नहीं हुआ है, हमारे मूल्यों का, हमारे आदर्शों का, हमारी नैतिकता का-सबका कबाड़ा हो गया है । विदेशों में हमारी मैडम का यशोगान हो रहा है। उनकी प्रशंसा-प्रशस्ति में पूरा विश्व परस्पर होड़ कर रहा है और यहाँ अपने बच्चे अपनी उल्टी और अपना हगा हुआ खाकर पेट भरने के लिए मजबूर हैं । मैडम को यह विडम्बना कौन समझाए । समझाया तो उसे जाता है जो समझने के लिए तैयार हो । जानबूझ कर जो न समझने का नाटक करता है, उसे देवता भी नहीं समझा सकते । उनसे अब भी देश की गरीबी के बारे में कहा जाता है, वह प्रगति के आँकड़े पेश कर देती हैं । मेरा मन कहता है कि यदि अकेली मैडम चाहे तो महीने-भर में पूरे देश का नक्शा बदला जा सकता है । लेकिन मैडम नक्शा क्यों बदलें । नक्शा बदलने से स्थितियाँ भी तो बदल जायेंगी और यथास्थिति का पोषक कोई भी शासक स्थितियों को बदलने में ईमानदारी के साथ रूचि क्यों ले? जब नए-नए नारे देने से ही अपना काम चल जाता है तो समाज को सही मायने में बदलने की जहमत कौन मोल ले ।"[1]

वस्तुतः वर्तमान परिस्थितियों में सामान्य-व्यक्ति का जीवन और अधिक कष्टमय होता गया है । योग्यता की कोई पूछ नहीं रह गई है। आज वही सफल है, जिसके पास दाँत निपोरने की कला है । निम्न मध्यमवर्गीय चंदन नेगी सोचता है- "आज हिन्दुस्तान इनका है। उन सबका है, जो गलत हैं । गलतियों का नाम हिन्दुस्तान है । स्वार्थ, भ्रष्टाचार और कदम-कदम पर झूठ का दूसरा नाम । मैं गलतियों के साथ होता.... आज मेरा भी कुछ होता ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 382

किसी का चमचा बन जाता या सब स्थितियों में दाँत निपोरने का अभ्यास करना ही आज सफलता की योग्यता हो गई है ।"[1] आजकल की इस भ्रष्ट राजनीति में आम आदमी निरन्तर पिस रहा है तथा वह भूख से पीड़ित है । मध्यमवर्गीय व्यक्ति राजनीति को बुरी नहीं मानते लेकिन वे कहते हैं कि नेताओं की भ्रष्टता ने इसे खराब कर दिया है। इसीलिए वह राजनीति में नहीं आना चाहता । देवेश ठाकुर के उपन्यास 'इसीलिए' में एक स्थान पर दिखाया है "उसकी राजनीति में कोई रूचि नहीं थी । लेकिन वह मानकर चलता था कि राजनीति अपने में कोई बुरी चीज नहीं होती । वास्तव में राजनेता ही होते हैं जो राजनीति को दूषित करते हैं । जब-जब मैं उसे राजनीति की ओर खींचता, वह कहता-इतने बड़े विषय पर सोचने का अवकाश ही कहाँ है यार। लोग अपने छोटे-छोटे दु:खों से इतने दु:खी हैं कि उससे ही बाहर नहीं आ पाते । राजनीति, नीति, मनुष्यता-इन सबके बारे में कैसे सोचेंगे । फिर सोचने के लिए एक दृष्टि भी तो चाहिए । सोचने की ईमानदारी भी तो चाहिए । इस भूखे, नंगे, भ्रष्ट देश में ईमानदारी है कहाँ? और यदि है भी तो वह हाशियों में उपेक्षित पड़ी है ।"[2] मध्यमवर्ग का व्यक्ति हर समय सोचता है कि इस भ्रष्ट व्यवस्था में निरन्तर बुराईयाँ बढ़ रही हैं और सब कुछ बिना प्रतिभा के हो रहा है । आज की राजनीति में निरन्तर भ्रष्टाचार बढ़ रहा है । देवेश ठाकुर के उपन्यास "अपना-अपना आकाश" में मध्यमवर्ग के व्यक्ति द्वारा एक स्थान पर कहलवाया है कि "जिस करप्ट सिस्टम में हम रह रहे हैं, वहाँ एक अकेला आदमी क्या कर सकता है । मैं भी अपने अफसर की हिदायतों का ही पालन करता । इस व्यवस्था को मजबूत बनाने में ही मेरा उपयोग होता... जबकि आज के सिस्टम से मैं हेट करता हूँ.... । मुझे घृणा है इस सबसे जो आज हमारे आसपास हो रहा है। कला के क्षेत्र में भी कौन-से प्रतिभाशाली लोग आ रहे हैं। सब कहीं न कहीं किसी भ्रष्टाचार से जुड़े हुए हैं । कोई

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 55
2. वही, देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), पृ० 66

राजनीति से जुड़ा हुआ है और कोई अपनी गिरोहबाजी से.... ।"[1] मध्यमवर्ग के लोग इस भ्रष्ट राजनीति के शिकार हैं और चाहते हुए भी वह नहीं कर सकते, जो वह चाहते हैं । फिर भी वे इस भ्रष्ट व्यवस्था में निरन्तर अपना जीवन जी रहे हैं और इस भ्रष्ट व्यवस्था के बारे में कहते हैं, "देश को चलाने वाले एक सिरे से भ्रष्ट हैं । राजनीति वेश्या हो गई है । बड़े नेता अपने-अपने किलों में आराम फरमा रहे हैं । छुटभैये दलाली कर रहे हैं... ऐसे में कुछ नहीं किया जा सकता ।"[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मध्यमवर्ग का व्यक्ति हर स्थान पर इस भ्रष्ट राजनीति का शिकार होता है जिसने उसकी प्रतिभा को दबा दिया है। वह हर समय परेशान व दु:खी रहता है। आज के इस भ्रष्ट राजनीतिक माहौल ने सभी कुछ बर्बाद कर दिया है जिससे इस वर्ग के लोग उभर नहीं पा रहे हैं । उनकी आकांक्षाएँ, इच्छाएँ और आशाएँ सभी कुछ इस राजनीतिक के कारण धरी की धरी रह गयी हैं ।

5.2 भ्रष्ट राजनेताओं का चित्रण

राजनीति के क्षेत्र में फैले इस भ्रष्टाचार के लिए आज के राजनेता जिम्मेदार हैं । जो लोग देश की आजादी के लिए अपने जीवन तक की कुर्बानी देने को तैयार थे, वे और उनकी अगली पीढ़ी आज अवसरवादी और स्वार्थी बन बैठी है । इस तरह जिन पर देश के नेतृत्व का दायित्व है, जिन्हें न्याय, सुरक्षा एवं व्यवस्था स्थापित करनी है, वे ही व्यवस्था को प्रश्रय दे रहे हैं । देवेश ठाकुर ने ऐसे भ्रष्ट राजनेताओं के असली चरित्र को मध्यमवर्ग के माध्यम से उद्‌घाटित किया है । ये नेता सारे मूल्यों को ताक पर रखकर सिर्फ पैसा बटोरना अपना धर्म मानते हैं। इनका नारा होता है कि यदि तुम मुझे पैसा दोगे तो मैं तुम्हें परमिट दूँगा और तुम्हें लाइसेंस दूँगा । इसके साथ-साथ ही तुम्हारी 'ए' फिल्म को यू सर्टीफिकेट भी दूँगा ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (अपना-अपना आकाश), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 170
2. वही, पृ० 176

इनके दलाल इनके जजमानों से निरन्तर पैसा उघाते रहते हैं । जब तक ये पोजीशन में होते हैं तब तक हर तरफ पैसा बहता रहता है। आमदनी बढ़ जाती है । पेट फूलता जाता है । बदहजमी होती जाती है।

इसी प्रवृत्ति के कारण एक छोटे-मोटे कांग्रेसी कार्यकर्त्ता मध्यमवर्गीय अवस्थी का ठाठ-बाट इतना बढ़ जाता है कि जो पहले किसी कंपनी के सुपरवाइजरी स्टाफ में लगा होता है, वह वार्डन रोड़ में पन्द्रह सौ फुट फ्लैट में रहने लगता है, जिसमें 6-7 कमरे होते हैं । कमरे में वाल-टू-वाल इम्पोर्टेड कारपेट, बी० प्रभा और हुसैन की पेंटिंग्ज, भारी-भारी सिल्क के पर्दे और नेचुरल पॉलिश किया हुआ स्लोक फर्नीचर होता है ।

कांग्रेसी नेताओं के चरित्र का उद्‌घाटन करते हुए 'जनगाथा' के शंकर भाई कहते हैं, "कांग्रेस के दो रूप हमारे सामने हैं । एक तो आजादी के पहले की सत्ताहीन, लड़ाकू कांग्रेस और दूसरी आजादी के बाद सारे स्वादों का मजा लेती और मजा मारती कांग्रेस। इन पन्द्रह सालों में उसमें बिगाड़ ही बिगाड़ आया है । सत्ता का स्वाद बड़ा मारक होता है ।....एक बार मुँह को लग गया तो छूटे नहीं छूटता । और यह स्वाद ही, उससे सब तरह के गलत कामों को करवाता है । इन गलत कामों को करने के लिए वह नयी-नयी भूमिकायें बनाता चलता है ।"[1]

सत्ता के इस लालच में नेतागण देश को निकम्मा बनाए रखना चाहते हैं। यदि उन्हें देश और समाज की चिंता होती, तो इतने सालों में देश कहाँ का कहाँ पहुँच जाता, लेकिन अपने स्वार्थ के लिए ये नेतागण खुद भ्रष्टाचार को अपनाते हैं । इसीलिए नेताओं द्वारा सत्ता हथियाने का हर संभव प्रयास बेखटके किया जाता है। यथास्थिति बनाए रखने के लिए ये जनता की मूल समस्याओं को जैसे का तैसा ही रखते हैं । देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'गुरुकुल' में मध्यमवर्गीय व्यक्ति की ओर से कहा है- "शीतांशु, तुम तो लेखक हो । इस बात को मुझसे ज्यादा जानते हो कि व्यवस्था शासक के

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 394

इशारे से चलती है और जहाँ शासक और सत्ता ही भ्रष्ट हो, वहाँ कानून, ईमानदारी, मेहनत, निष्ठा, चरित्र और आदर्श जैसे शब्दों का कोई मतलब नहीं रह जाता । हालांकि सत्ता इन्हीं शब्दों को हवा में फेंकती है और इन्हीं की आड़ में सारा भ्रष्टाचार और दुराचार करती है ।"[1] यह सब राजनेताओं पर निर्भर करता है कि वो अपने देश को किस प्रकार चला सकते हैं? लेकिन वो तो निरन्तर भ्रष्टाचार में संलिप्त होकर ही कार्य कर रहे हैं । इससे देश का भला कैसे हो सकता है ।

5.3 वोट की राजनीति का चित्रण

राजनेताओं के बीच सत्ता हथियाने के प्रयासों का सर्वाधिक घृणित रूप है, उनके द्वारा वोट की राजनीति चलाना । इसके लिए सारे सिद्धान्त छोड़कर चुनाव के पहले तमाम सारे चुनावी गठबंधन होते हैं । उस समय देश का हित गौण बन जाता है । 'जनगाथा' का मध्यमवर्गीय शिवनाथ ऐसी स्थितियों के प्रति सोचता है- 'लेकिन किसका देश? कैसा देश? देश का कौन-सा हित? यहाँ तो बस, वोटों की राजनीति है । वोटों का खेल है । वोट बटोरने के लिए इन्दिरा पैंतरा बदल रही है । देवरस इन्दिरा की प्रशंसा करने लगे हैं। फारूख अब्दुल्ला ने कर्णसिंह के समर्थन की घोषणा कर दी है। लोकदल और भारतीय जनता पार्टी गले मिल रहे हैं । आगामी चुनावों की तैयारियाँ शुरू हो गई हैं । चन्द्रशेखर ने भारत-यात्रा पूरी कर ली है । पंजाब और असम की सीमाओं का उनके चरण कमलों ने स्पर्श नहीं किया । वहाँ जगह-जगह खून जो बिखरा पड़ा है । उनके पैर गन्दे हो जायेंगे ।"[2]

'जनगाथा' के जोशी और शिवनाथ जब भी मिलते हैं, वे इन राजनीतिक स्थितियों का विश्लेषण करते रहते हैं । देश की एकता के नाम पर अनिश्चितता का निर्माण करके सत्ता पर रहने के षड़यन्त्र का उद्‌घाटन करते

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (गुरुकुल), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 22
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 337

हुए जोशी कहता है – "पंजाब की पूरी समस्या, असम की तरह कांग्रेस की बनायी हुई है । ....पहले तुम अपने स्वार्थ और लाभ के लिए कुछ टुटपुंजियों को भड़का दो और बाद में शोर मचाओ कि ये लोग देश की एकता के लिए खतरा बन गये हैं।"[1]

दल-बदल स्वार्थपूर्ण राजनीति का एक अन्य घृणित रूप है। इसका भी एकमात्र उद्देश्य किसी तरह सत्ता में बने रहना है । इसकी ओर भी देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'जनगाथा' में संकेत किया है – "भजनलाल पूरी खेप के साथ कांग्रेस में आ जायें और तुम उसके लिए भी गलीचे बिछा दो-यह साली कौन-सी नैतिकता है ।"[2] भारतीय नेताओं की इस विशेषता की ओर 'जनगाथा' का जोशी स्पष्ट संकेत करता है – "इसी देश में ठीक हमारी नाक के नीचे आधी आबादी भूखे पेट सोती है । उसे क्या फायदा हुआ इस आजादी का । हम बस नारे लगाने और नारे देने में माहिर हैं, एक्शन हमारे बस की बात नहीं है।"[3]

मध्यमवर्गीय जोशी और शिवनाथ के विचार न सिर्फ शासन से जुड़े नेताओं की चालाकी और उनके स्वार्थी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं, बल्कि यथास्थिति बनाए रखने के उनके षड़यन्त्र को भी उजागर करते हैं । भारतीय राजनीति में आजादी के बाद से यही परम्परा रही है । वास्तव में कोई समस्या ऐसी नहीं होती, जिसका कोई समाधान ही न निकाला जा सकता हो, किन्तु अपने स्वार्थ के कारण शासक वर्ग के लोग उसे दूर नहीं करना चाहते। यथास्थिति बनाए रखकर वे जनता की सहानुभूति और समर्थन चाहते हैं । जोशी की एक टिप्पणी इसी कांग्रेसी संस्कृति की ओर संकेत करती है- "कांग्रेस-संस्कृति की यही विशेषता है कि वह चुनाव के आसपास इस प्रकार के लुभावने नारे देने में सिद्धहस्त है । जो बाप ने किया, वह बेटी कर रही

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 492
2. वही, पृ० 492
3. वही, पृ० 496

है । बस नारे देती है, करती कुछ नहीं।"[1] हमारे देश के नेताओं का यही एक नारा होता है । मध्यमवर्गीय व्यक्ति राजनेताओं को अच्छी प्रकार से समझता है और उनकी एक-एक बात को बड़े गौर से सुनकर उस पर अपना निर्णय लेता है । उन्होंने हमेशा देखा है कि यह राजनेता तो बस वोट की राजनीति करते हैं और चुनाव के बाद इस जनता को भूल जाते हैं। राजनेता अपनी मनमानी से कार्य करते हैं और जनता हितैषी कार्य भी केवल वोट पाने के लिए ही करते हैं, वो भी चुनाव के आस-पास ।

5.4 नेतृत्व और चारित्रिक दृढ़ता का चित्रण

देवेश ठाकुर ने नेताओं के भ्रष्ट रूप एवं भ्रष्ट प्रशासन का कारण भी स्पष्ट किया है । उनके अनुसार हमारी धर्मप्राणता को, हमारे नैतिक आदर्शों को और हमारी ओढ़ी हुई महानता को घुन लग गया है । शिक्षा, संस्कार, प्रशिक्षण और मूल्यों के अभाव में हमारा धर्म साम्प्रदायिकता में बदल गया है। नैतिकता मोल-भाव करने की चीज बन गयी है और महानता एक तरह के विकृत बहम् में ढ़लकर खुद हम पर व्यंग्य करने लगी है । एक सिरे से भ्रष्ट नेतृत्व, एक सिरे से भ्रष्ट प्रशासन, एक सिरे से प्रतिक्रियावादी शिक्षा-नीति आज के दिन इन्हीं सबने पूरे माहौल को गटर बनाकर रख दिया है ।

इस तरह इन भ्रष्ट परिस्थितियों के मूल में नेतृत्व और प्रशासन का भ्रष्ट रूप और शिक्षा-नीति का प्रतिक्रियावादी होना है, इस शिक्षा नीति के लिए भी जिम्मेदार नेता और प्रशासक ही है । देवेश ठाकुर ने सही नेतृत्व की भी पहचान बतायी है । 'प्रिय शबनम' के मध्यमवर्गीय शम्भूदा सच्चे जन-सेवक की पहचान बताते हुए कहते हैं- "अपने प्रति ईमानदार व्यक्ति ही जनता और समाज की सेवा के काबिल और उनके प्रति ईमानदार हो सकता है ।"[2] शम्भूदा स्वयं भी वही भाषा बोलता है, जो हमारे देश का मजदूर बोलता है,

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 340
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (प्रिय शबनम), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 277

जो फैक्टरी में काम करता है, हमारे देश का किसान बोलता है जो खुली धूप में तपता है और वर्षा में रिसता है । अपनी हर क्रिया में वह इस बात को प्रमाणित करना नहीं भूलते कि वे स्वयं आम आदमी हैं और आम आदमी के प्रवक्ता हैं । ऐसे व्यक्ति के सामने मंगल अपने आपको खड़ा करने में भी संकोच अनुभव करता है।

'जनगाथा' में भी लेखक ने इस ओर संकेत किया है कि नेतृत्व सिर्फ उन हाथों में होना चाहिए जो अपने आपको 'डी क्लास' कर सकें। जो मान्य होने के बाद भी आम आदमी से जुड़े रहें और उन्हीं के लिए लड़ाई लड़ते रहें । इस तरह इन्होंने नेताओं की चारित्रिक दृढ़ता को अधिक महत्त्व दिया है। जनतन्त्र की असफलता का एक कारण इनकी दृष्टि में यह भी है कि चरित्रवान राजनेताओं के मंच पर न आने के कारण सामान्य जनता भी चरित्रवान नहीं रह जाती । वह जैसा नेतृत्व को करता देखती है, उसी तरह का आचरण स्वयं भी करती है । मध्यमवर्ग का व्यक्ति चाहता है कि हमारे देश का नेता ऐसा होना चाहिए जो अच्छा नेतृत्व कर सके और हमारे देश को आगे लाये, उसे विकसित करे। जनता की सभी प्रकार की समस्याओं को अच्छी प्रकार से जानने वाला और उन पर गौर करने वाले नेता को ही वे चाहते हैं । वे कहते हैं कि हमारा नेता ऐसा हो जो नैतिक हो और लोगों को भी अच्छी बातें सिखाये तथा जनता में मिलकर रहे तभी इस देश की जनता उसको अपना सही नेता मानेगी और उसे भारी मतों से जीताकर अपने क्षेत्र में लायेगी ।

5.5 जनतन्त्र, अभिव्यक्ति की आजादी और प्रेस का चित्रण

जनतन्त्र में अभिव्यक्ति की आजादी का भी तभी कुछ मतलब निकलता है, जब उसे सुनने की ईमानदारी भी हो । नहीं तो भौंकते चले जाओ.... कौन परवाह करता है ।

वर्तमान शासन व्यवस्था की यही स्थिति है । उसके विरूद्ध लेखकों-पत्रकारों द्वारा साहित्य और अखबारों के माध्यम से कितना लिखा जा रहा है, लेकिन सरकार और नेताओं पर कोई असर नहीं होता । नेताओं की

भांति ही प्रेस पर भी पूँजीपतियों का आधिपत्य है। बड़े-बड़े प्रकाशन-संस्थान इन पूँजीपतियों के ही अधिकार में है। अत: वे भी शासन और पूँजीपतियों के गठजोड़ का ही राग अलापते मिलते हैं । मध्यमवर्गीय जोशी इस तथ्य को स्वीकार करता है- "जिन बड़े-बड़े अखबारों में हम काम करते हैं, उनके मालिक भी तो इन्हीं राजनेताओं और प्रशासकों से मिले हुए हैं । इस आजाद कहे जाने वाले मुल्क में आजाद प्रेस नाम की कोई चीज है क्या? जर्नलिस्ट उनकी रोटी तोड़कर उनके खिलाफ क्या, कितना कर सकते हैं? करना चाहकर भी नहीं कर सकते ।"[1]

स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण पत्रकारों में भी नैतिकता का ह्रास होता जा रहा है । परिणामस्वरूप पत्रकार भी नेताओं और गुण्डे तत्वों के साथ उनके षड्यन्त्र में शामिल हो जाता है । जोशी अपने साप्ताहिक के सम्पादक के नैतिक पतन की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि "पहले तो उसने बीस लाख रूपये खाकर सत्तासीन हाइकमाण्ड को अगले चुनाव तक उसका पक्ष-समर्थन करने का वचन दिया और बाद में विरोधी पार्टी से भी पैसा खाकर उनके कारनामों को डाइल्यूट करने लगा है ।"[2] इसीलिए आज अधिकांश पत्रकार अपने आस-पास के बड़े से बड़े सच से उद्वेलित नहीं होते, बल्कि उनके लिए वह सब एक खबर मात्र होती है । ऐसे लोगों के बारे में प्रो० शिवनाथ सोचते हैं - "असम जल रहा है । तीन हजार लोग मारे जा चुके हैं । सरकारी आंकड़े सिर्फ सैकड़ों की बात कहते हैं । जलियाँवाला बाग में कुछ सौ लोगों की जान गई थीं। सारा देश विद्रोह के लिए खड़ा हो गया था। यहाँ तीन हजार लोगों ने अपनी जानें गंवा दी, लेकिन देश सोया हुआ है। देश की मनीषा सोई हुई है। उनके लिए व्हिस्की सच है, रम का सुनहला रंग सच है । रमी और ताश के पत्ते सच हैं । बाकी सब कुछ से उनका सरोकार नहीं है । उन्होंने अपने-अपने अखबारों में रिपोर्ट लिख दी हैं और

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 451
2. वही, पृ० 454

उनका काम पूरा हो गया है । वे अपना काम पूरा करके यहाँ रिलेक्स कर रहे हैं ।"[1]

जनतांत्रिक व्यवस्था की असफलता के मूल में नेताओं, पत्रकारों और बुद्धिजीवियों का स्वार्थी और गुण्डे तत्त्वों से मेल होना प्रमुख है। लेखक भी इस माफिया में शामिल हो चुका है । जो लोग इसमें शामिल नहीं हैं, वे यदि कुछ करना चाहते हैं, तो भी कुछ नहीं कर पाते क्योंकि जिन लोगों को संरक्षक माना गया है, वह पुलिस व्यवस्था भी उन असामाजिक तत्त्वों को ही सुरक्षा प्रदान करती है। उसे एक पैकेट तनख्वाह का मिलता है तो दूसरा पैकेट 'हफ्ते' का। इन स्थितियों को बदलने की इच्छा नेताओं की भी नहीं होती। वे यथास्थिति बनाए रखना चाहते हैं, जिससे उन्हें भी उसका राजनीतिक लाभ मिलता रहे ।

5.6 राजनीति और आम आदमी का चित्रण

आजादी के बाद आम आदमी के विकास की जो बड़ी-बड़ी योजनायें बनी उनसे, उसके जीवन पर कोई खास असर नहीं हुआ। ऐसा नहीं है कि आम आदमी ने कोई प्रगति नहीं की । प्रगति हुई किन्तु अमीर-गरीब का फासला बढ़ता ही चला गया । गरीब आज भी अपनी रोजी-रोटी के लिए संघर्ष कर रहा है । आजादी के बाद की इन स्थितियों के बारे में मध्यमवर्गीय चंदन सोचता है- "आजादी के बाद गरीब आदमी पोस्टरों पर चिपक गया है । अमीरों की तिजोरियाँ और भी बढ़ गई हैं । फिर भी सब चिंतित हैं । किसी को अपना पेट भरने की चिंता है, किसी को अपने सेफ की । दौड़-भाग, स्पर्धा, ईर्ष्या, कुचलो, जिसे कुचल सकते हो.... आज की यही कथा है ।"[2] ऐसी स्थितियाँ इसलिये उत्पन्न हो गई हैं क्योंकि आज शासन उन हविशमंदों के हाथों में चला गया है, जिनके लिए मूल्यों का कोई अर्थ नहीं होता। पल-पल

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 336-337
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 54

इंसानियत राख होती जा रही है । ऐसे हालात में आज आदमी कहाँ तक पनप सकता है- कुछ परिवार भले ही पनप लें । 'काँचघर' में लेखक ने स्पष्ट कहा है, "कुछ परिवारों की ही पौ-बारह हैं । आम आदमी जाये कचरे में । प्रैस है, वे कुछ परिवारों के हाथ में है । इन्डस्ट्री है, उन पर कुछ परिवारों का कब्जा है । फिल्लम है, वहाँ भी कुछ परिवार हैं जो फल-फूल रहे हैं और यह सब इसलिये है कि इस देश की राजनीति खुद कुछ परिवारों की जायदाद बनकर रह गयी है ।"[1]

देवेश ठाकुर की अपेक्षा है कि "आम आदमी को इस दुर्दशा से उबरने के लिए यह भली-भांति समझना होगा कि उनकी इन स्थितियों के लिए जिम्मेदार कौन है । उसे यह जानना होगा कि जो पार्टी जनता का 400 करोड़ रुपया खर्च करके चुनाव जीतती है, वह जनता की हितैषी हो ही नहीं सकती। उसे यह जानना होगा कि यह देश जनता का है, नेताओं का नहीं । सारा उत्पादन जनता का है, जमाखोरों का नहीं । सारी उपलब्धि जनता की है, किसी एक खानदान की नहीं । एक खानदान की सत्ता और राजनीति जनतन्त्र में नहीं चलनी चाहिये । जब जनतन्त्र की नकाब में एक खानदान शासन करने लगता है, तब पूरा देश भ्रष्ट बनकर अन्ततः पंगु हो जाता है। देश को पंगु नहीं बनाना है ।"[2]

आम आदमी में यह सब समझने की काबिलियत और जागरूकता तभी आयेगी जब वह जनतन्त्र के लिए प्रशिक्षित होगा । इसी के साथ-साथ जनता का प्रशिक्षित होना भी जरूरी है क्योंकि प्रशिक्षण पाने के बाद वह अपने हितों की रक्षा के लिये संघर्ष भी कर सकती है । वस्तुतः जनतन्त्र वास्तव में जन का तन्त्र तभी होगा जब जनता सक्रिय रूप से शासन की गतिविधियों में रूचि ले । देवेश ठाकुर ने तो यहाँ तक कहा कि जब तक आम आदमी की शिरकत व्यवस्था के निर्माण में नहीं होती, जब तक व्यवस्था की रीति-नीति के

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (काँचघर), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 394
2. वही, पृ० 476

निर्माण में प्रत्येक जन का सीधा पार्टिसिपेशन नहीं होगा, तब तक इस मारक व्यवस्था में बदलाव का जर्रा भी जुड़ने वाला नहीं है।

देवेश ठाकुर द्वारा लिखित उपन्यासों में आम आदमी को राजनीति में रूचि लेते हुए दिखाया है । सबसे अधिक तो समाज का मध्यमवर्ग ही इसमें रूचि दिखलाता है जिसे राजनीतिक कार्यों में भाग लेने की हमेशा होड़ रहती है तथा उनमें राजनीति के प्रति कुछ कर गुजरने की चाह होती है । 'जनगाथा' उपन्यास में मध्यमवर्गीय जोशी राजनीति में आना चाहता है । "जोशी 'निट' लेता है । एक घूँट भरते हुए कहता है- सोच रहा हूँ, अगले साल मैं भी कारपोरेशन का इलेक्शन लड़ जाऊँ ।

तुम? और इलेक्शन?' मैं आश्चर्य और अविश्वास व्यक्त करता हूँ।

- क्यों यार, मैं कारपोरेटर भी नहीं हो सकता क्या? जैलसिंह राष्ट्रपति हो सकते हैं, गुँडू राव और अजैया मुख्यमंत्री हो सकते हैं । आखिर मैं तो पढ़ा-लिखा आदमी हूँ । और ऐसा-वैसा कोई चार्ज भी मेरे ऊपर नहीं है ।'

- लेकिन इन्दिरा जी के प्रति निष्ठा कहाँ से लाओगे?'

- कौन साला कांग्रेस के टिकट पर लड़ेगा?'

- तो फिर?'

- यार इंडिपेडेन्ट लड़ेंगे।'

- क्या?'

- हाँ, इंडिपेडेन्ट । अपने कॉलम में मैंने दत्ता सामन्त को हीरो बना दिया । उससे कहेंगे कि डॉक्टर, एक सेफ वार्ड दे दो हमें । वह दे देगा । तुम्हारी क्या रॉय है?'[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आजादी के बाद भ्रष्ट तन्त्र के कारण आम आदमी प्रगति नहीं कर सका और शासन तन्त्र एक ही परिवार की जायदाद बनकर रह गया है जिस कारण वे निरन्तर मनमानी कर रहे हैं और

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 338

जनता का शोषण बढ़ता ही जा रहा है। राजनीतिज्ञ तो बस अपने घर भर रहे हैं, उन्हें आम आदमी की कोई चिंता नहीं है । लेखक का मानना है कि राजनीति में जनता का सीधा हिस्सा होना चाहिए । कहीं-कहीं मध्यमवर्गीय व्यक्ति राजनीति में अपने पैर जमाने की भी सोचता है क्योंकि वह आम आदमी का भला करना चाहता है जो आज तक इस देश के राजनेताओं ने नहीं किया ।

5.7 भ्रष्ट व्यवस्था और विरोध के स्वर का चित्रण

वर्तमान में जो भ्रष्ट व्यवस्था है, उसके प्रति मध्यमवर्गीय लोगों ने विरोध के स्वर कहे हैं तथा इस भ्रष्ट समाज में राजनीतिज्ञों के चारित्रिक नैतिक पतन का कारण ही इस भ्रष्टता को माना है । 'गुरुकुल' उपन्यास में भ्रष्ट व्यवस्था को बढ़ाने वाले नेताओं-शासकों के योगदान को अधिक स्पष्ट ढंग से व्यक्त किया है - "व्यवस्था शासक के इशारे से चलती है और जहाँ शासक और सत्ता ही भ्रष्ट हो, वहाँ कानून, ईमानदारी, मेहनत, निष्ठा, चरित्र और आदर्श जैसे शब्दों का कोई मतलब नहीं रह जाता । हालांकि सत्ता इन्हीं शब्दों को हवा में फेंकती है और इन्हीं की आड़ में सारा भ्रष्टाचार और दुराचार करती है ।"[1]

इस भ्रष्ट व्यवस्था में सबसे अधिक दुखी और असन्तुष्ट है ईमानदार आदमी । इस व्यवस्था में योग्यता और ईमानदारी की कोई पूछ नहीं है । धूर्तों और चाटुकारों से भरी इस व्यवस्था में डिग्रियों का कोई महत्त्व नहीं है । सरकारी दफ्तरों से फाइलों के बंडल के बंडल गायब हो जाते हैं । कानून और व्यवस्था खोखली बन चुकी है । इसीलिए हर ईमानदार आदमी को ताव आ जाता है । वह इस व्यवस्था से खुश नहीं हो पाता । सब जगह झूठ फरेब के बीज कुकरमुत्तों की तरह उग आये हैं । जिनकी थैलियों में सिक्के और नोट हैं और जिनकी मुट्ठियों में अधिकार बन्दी हैं । वे इस भ्रष्ट समाज के नियामक बने हुए हैं और आम आदमी को जिन्दा रखने के लिए उसे टुकड़े

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (गुरुकुल), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 22

डालकर मदारियों की तरह नचा रहे हैं । जो कुछ सोच-विचार कर सकते हैं, वे इन कमीनों के षड्यन्त्रों की कठपुतलियाँ बन कर रहे गये हैं ।

धन और सत्ता के सामंजस्य के कारण भ्रष्ट बनती जा रही इस व्यवस्था में सभी वर्गों के लोग संलिप्त हैं । जो नहीं हैं, वे भ्रष्ट बनने के अवसर की तलाश में हैं जिसके कारण कुछ ईमानदार किस्म के लोग समस्या में पड़ जाते हैं । मध्यमवर्गीय चन्दन इसीलिए यह सोचता है कि "कौन-सा वर्ग है जो ईमानदार रह गया है? जिसे मौका मिलता है, नोच-खसोट करने में लग जाता है । हर शोषक दो-तीन पीढ़ियों के लिए निश्चित हो जाना चाहता है।..... लोग बेइमानी को धर्म समझने लगे हैं।..... मैं सह लूँगा इस व्यवस्था को-जहाँ पाँच साल की सर्विस के बाद एक प्रोफेसर को साढ़े-तीन सौ रुपये मिलते हैं और किसी प्राइवेट कम्पनी में मामूली-से क्लर्क को पाँच सौ, जहाँ शासन तन्त्र में एक प्रबुद्ध उपेक्षित हुआ रहे, और दूध बेचने वाला मंत्री बन जाए, क्योंकि आजादी की लड़ाई में वह एक बार जेल गया था । मैं सह लूँगा इस सारी व्यवस्था को।"[1]

चंदन का यह सोचना भ्रष्ट व्यवस्था के उस नग्न रूप को उजागर करता है, जिसमें एक सचेष्ठ और जागरूक बुद्धिजीवी भी इन दूषित स्थितियों को सहन करने के लिए विवश है । वस्तुतः व्यवस्था के इस रूप से अधिक क्षुब्ध ईमानदार बुद्धिजीवी वर्ग ही होता है । अतः इसके परिवर्तन की इच्छा और आवश्यकता भी वही संजीदगी से महसूस करता है । 'गुरुकुल' के डॉ० शीतांशु अपने विद्यार्थी अरोड़ा को समझाते हुए कहते हैं कि "इस व्यवस्था में फँसाकर हम-तुम जैसे लोगों को बहुत छोटा और बहुत बौना बना दिया गया है। इतना छोटा और इतना बौना कि हमारी कोई हैसियत या औकात ही नहीं रह गयी है । लेकिन एक बात है, यह हालत हमेशा रहने वाली नहीं है । बस हमें सही मौके का इन्तजार करना चाहिए ।"[2]

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 144-145
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (गुरुकुल), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 57

'जनगाथा' में भी लेखक का व्यवस्था-विरोधी स्वर अनेक स्थानों पर प्रकट हुआ है । परिवर्तनों की इच्छा व्यक्त करते हुए लेखक यह मानता है कि "जो कुछ है और जैसा है, हमें उसी को सच मानकर नहीं रह जाना चाहिए । इंसान को आखिरी साँस तक अपने लिए कोशिश करनी चाहिए और अगर कोशिश शिद्दत के साथ और सही दिशा में की गई हो, तो वह जरूर अपना रंग दिखलायेगी ।"[1]

इस तरह व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और सड़ान्ध दूर करने के लिए इन्होंने सक्रिय संघर्ष को आवश्यक माना है । इनका विश्वास है कि हमारे देश में एक नयी पीढ़ी जन्म ले चुकी है जो इस व्यवस्था को बदलेगी । हमारी मान्यताएँ परिवर्तित होगी । लेकिन इसके लिए तीव्र संघर्ष करना होगा, जो प्रतिक्रिया और गतिशील शक्तियों के बीच का संघर्ष होगा । इसमें एक ओर महाजनी सभ्यता और उसके चाटुकार राजनीतिज्ञ, लेखक-अध्यापक और पत्रकार होंगे और दूसरी ओर एक हाथ में ईंट और दूसरे में कलम लिये देश के सुख-दुखों से प्रतिबद्ध लेखक और सही राजनेता । तब लेखक कागज पर भी क्रान्ति लिखेगा और सड़कों पर भी । देवेश ठाकुर के उपन्यास 'अन्ततः' में एक स्थान पर विद्रोह का स्वर दिखाया है । "आज पूरा देश पंचवर्षीय योजनाओं की असफलताओं, कस्बों और गाँवों में बढ़ती हुई जहरीली बदहाली और बेरोजगारी, मन्त्री से लेकर सन्तरी तक फैलते हुए भयावह भ्रष्टाचार और सीमा का अतिक्रमण करते हुए मूल्यों के ह्रास से पीड़ित है । इससे जनतन्त्र का पूरा ढाँचा ही हिलने लगा है । आक्रोश और हिंसा के साथ-साथ निराशा और मारक नशीला पलायन नयी पीढ़ी को जकड़ने लगा है । दूसरी ओर, जन आंदोलन हो अवश्य रहे हैं लेकिन वे आम आदमी के लिये कारगर मुद्दों को लेकर नहीं, जाति, सम्प्रदाय और धार्मिकता के खूंटे से बँधे हुए अधिक हैं । इस पूरे माहौल में हमारे बुद्धिजीवियों की स्थिति और भी चिंतनीय है । जनवाद के पैरोकार और उनके आका अपने वक्त की समस्याओं को बीते जमाने की आँखों से देखने का स्वाँग रच रहे हैं । दरअसल कुर्सीधारी जनवादी

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 377

आकाओं की यह एक महीन साजिश है । जनवादी आकाओं का यह गिरोह मंच पर तो क्रान्तिकारी दिखाई देता है लेकिन अपने ड्राइंग रूम और बैडरूम में यह घोर ब्राह्मणवादी और प्रतिक्रियावादी है । देश को चिंतन के स्तर पर सबसे बड़ा खतरा इन्हीं प्रपंचियों से है। गरीबी, बदइन्तजामी, बेहाली और बेईमानी के इस सड़े हुए माहौल में ये मिथक और सौंदर्यशास्त्र की रसोई बनाने में मशगुल हैं। इनकी इस साजिश को पहचानने की कोशिश होनी चाहिये।"[1] मध्यमवर्ग के लोगों में समाज में हो रही बुराई और गलत कार्यों के प्रति विरोध का स्वर होता है । राजनेता लोगों के साथ किस-किस प्रकार के खेल खेल रहे हैं और इस जनता को बेवकूफ बनाकर अपने स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। उन पर मध्यमवर्ग ने विरोध का स्वर प्रकट किया है ।

5.8 संघर्ष का स्वरूप

व्यवस्था-विरोध के लिए संघर्ष का जो स्वरूप देवेश ठाकुर की दृष्टि में आकार ग्रहण करता है, वह शोषित-पीड़ित और सर्वहारा वर्ग को उसके अधिकार दिलाने तथा उसके हितों की रक्षा करने के लिए किया गया संघर्ष है। 'प्रिय शबनम' के शम्भूदा इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं "सही विचारक और प्रबुद्ध व्यक्ति का यही कर्त्तव्य होता है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच फैली असमानताओं को दूर करने का प्रयत्न करे । सदियों से यह प्रयत्न होता रहा है, और जब तक ये खाइयाँ बनी हुई हैं, हमेशा होता रहेगा । भले ही हमारे प्रयत्नों से यह वैषम्य दूर न हो लेकिन कम तो हो ही सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच वैषम्य की यह कमी हमेशा बढ़ती जायेगी और एक दिन हम पायेंगे कि समाज में समतावादी आदर्श स्थापित हो गया है- यही हमारा उद्देश्य है । इसीलिए हम भटक रहे हैं और यदि हम इस भटकन को सार्थक बनाना चाहते हैं तो हमें अभाव-ग्रस्त, शोषित और टूटे हुए लोगों का ही पक्ष लेना होगा।"[2]

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (अन्ततः), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 373-374
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (प्रिय शबनम), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 278

गरीबों और शोषित-पीड़ितों का पक्ष-समर्थन करना तथा उनके हितों की रक्षा के लिए लड़ाई लड़ना इतना आसान नहीं होता । यह लड़ाई लड़ने वाला ऐसा व्यक्ति होता है, जो अपने जीवन, अपने भविष्य और अपनी पीढ़ी के विषय में न सोचकर समूचे समाज और राष्ट्र और उसके भविष्य के बारे में सोचता है । वह अच्छी तरह जानता है कि उसका जीवन एकदम अनिश्चित है। कब उसके जीवन का अन्त हो जायेगा, वह नहीं जानता । लेकिन अपने स्वार्थ में सीमित न होकर भी वह दूसरे हजारों-लाखों के लिए अपनी जान पर खतरा मोल लेता है ।

देवेश ठाकुर ने इसीलिए यह स्वीकार किया है कि गरीबों की यह लड़ाई वही लड़ सकता है जिसने अपने जीवन में अभाव देखे हों। सम्पन्न व्यक्ति थोड़ी देर के लिए सहानुभूति अवश्य रख सकता है, किन्तु वह पूरी तरह से अपनी जड़ों से कटना भी नहीं चाहेगा क्योंकि सम्पन्नता का आकर्षण बड़ा जबरदस्त होता है । अतः इनका मानना है कि अभाव में पला हुआ आदमी ही अभावग्रस्त और शोषितों को समझ सकता है । फैशन के लिए सहानुभूति जताने वालों से कोई काम नहीं होता ।

गरीबों के लिए किया गया यह संघर्ष संगठित रूप में प्रयत्न किये जाने की माँग करता है । अकेला व्यक्ति इस भ्रष्ट व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष तो कर सकता है, किन्तु उससे कुछ हासिल होना कठिन हो जाता है । मध्यमवर्गीय अवस्थी इस ओर संकेत करता हुआ अपनी डायरी में लिखता है- "तुम भी मनुष्य हो । तुम्हें भी सुविधाओं और सम्मान के साथ जीने का अधिकार है और यह अधिकार तुम्हें खुद हासिल करना होगा । अपने अधिकार के लिए तुम एकजुट हो जाओ ।"[1]

संगठित होकर संघर्ष करने और अपने अधिकारों को हासिल करने का संदेश मध्यमवर्गीय चंदन भी देता है- "अकेले व्यक्ति से क्या होगा। समाज के लिए तो सबको या अधिकांश लोगों को एकजुट होना पड़ेगा ।"[2]

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 108
2. वही, पृ० 155

देवेश ठाकुर ने जहाँ भ्रष्ट व्यवस्था का चित्रांकन किया है, वहीं उस व्यवस्था के विरोध का स्वर भी मुखरित किया है। इसके लिए वे संगठित होने का महत्त्व भी स्वीकारते हैं। किन्तु इस संदर्भ में जो महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि चिंतन और कर्म दोनों में सामंजस्य रखते हुए किया गया संघर्ष ही इनकी दृष्टि में सार्थक संघर्ष होगा। 'भ्रमभंग' में वह स्पष्ट कहते हैं कि "जब तक चिंतन और व्यवहार की यह क्रान्तिदर्शा प्रवृत्ति एक व्यक्ति-वर्ग में केंद्रित नहीं हो जाती तब तक परिवर्तन की बात कहना बेमानी है ।"[1] 'जनगाथा' के जोशी का व्यवस्था-विरोध इनकी इसी दृष्टि के तहत दृष्टिगत होता है। वह स्पष्ट कहता है- "जो मारे, उसको मारो । जो दुख दे, उसको दुख दो । जो शोषण करे, उसका सीधा विरोध करो । सिर्फ इसी तरह क्रान्ति की दिशा प्रशस्ति हो सकती है ।"[2]

मध्यमवर्ग के लोगों में हमें संघर्ष का स्वरूप देखने को मिलता है। यदि इस देश में कहीं भी कोई बुरा या गलत कार्य हो रहा हो तो इस वर्ग के लोग अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दिखाते हैं । ये लोग बुराई को सहन करने के पक्ष में नहीं है और जुर्म करने वाले को भी फटकार लगाने से नहीं चूकते । हमारे देश के नेताओं और राजनीतिक पर तो उन्होंने बहुत अधिक व्यंग्य किये हैं और स्वार्थी नेताओं और भ्रष्ट राजनीति को उखाड़ फैंकने की बात इन्होंने की है। देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में व्यवस्था-विरोध में मध्यमवर्ग को ही आगे लिया क्योंकि यही संघर्ष कर आगे बढ़ना वाला है और यही वर्ग कहता भी है कि एक अकेला व्यक्ति व्यवस्था नहीं बदल सकता बल्कि सभी को एक साथ आगे आना चाहिये तभी इस भ्रष्ट-व्यवस्था को बदला जा सकता है और गरीबी को दूर किया जा सकता है ।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि देवेश ठाकुर ने वर्तमान भ्रष्ट राजनीतिक स्थितियों का बेबाक चित्रण किया है । इनके अनुसार आजादी के

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 64
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 376

बाद स्वार्थी, अवसरवादी और दाँत निपोरने वाले ही सफल माने जाने लगे हैं । इस भ्रष्ट व्यवस्था को प्रश्रय देने वाले राजनेता हैं । इन राजनेताओं का नैतिक पतन इतना अधिक हो गया है कि वे देश की कीमत पर भी अपना स्वार्थ साधने से बाज नहीं आते । नाना प्रकार के छल छद्म और दंद-फंद द्वारा वे कुर्सी पर बने रहना चाहते हैं । उनका पूरा समय वोट की राजनीति करने में ही व्यतीत होता है । जाति, सम्प्रदाय या प्रदेश के आधार पर वे लोगों को बाँटकर अपनी राजनीतिक पकड़ बनाये रखना चाहते हैं। दलबदल भी उसी वोट की राजनीति का एक हिस्सा है । नेताओं के इसी स्वार्थी दृष्टिकोण के कारण जनतान्त्रिक व्यवस्था असफल-सी हो गयी है ।

देवेश ठाकुर की यह भी मान्यता है कि जन-प्रतिनिधियों का शासन नहीं होता क्योंकि इसमें जन का सही प्रतिनिधित्व नहीं होता। जनतन्त्र की इस असफलता का सबसे बड़ा शिकार हुआ है आम आदमी। रचनाकार आम आदमी की राजनीति में सीधी शिरकत करने की हिमायत करता है । जनतन्त्र की सफलता के लिए उसे प्रशिक्षित किये जाने का विचार भी लेखक ने व्यक्त किया है क्योंकि प्रशिक्षण के बाद ही वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकेगा और संघर्ष की ओर उन्मुख होगा ।

इन्होंने वर्तमान शासनतन्त्र की पूँजीपतियों से मिली-भगत की कड़ी आलोचना की है तथा जनतन्त्र की असफलता के लिए इस गठबंधन को जिम्मेदार ठहराया है । इस मिली-भगत में कुछ बुद्धिजीवी एवं पत्रकार भी शामिल हैं । देवेश ठाकुर ने इनके सम्मिलित षड्यन्त्र का चित्रण करते हुए नेताओं में चारित्रिक दृढ़ता की आवश्यकता पर बल दिया है ।

इस भ्रष्ट व्यवस्था में पिस रहे शोषित-पीड़ित लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति स्पष्ट करते हुए इन्होंने सक्रिय रूप में व्यवस्था- विरोध का संकेत दिया है । इसके लिए इन्होंने संगठित होने पर भी जोर दिया है । इस तरह इन्होंने समूची राजनीति में व्याप्त भ्रष्ट स्थितियों को चित्रित किया है तथा उनके विरूद्ध सक्रिय संघर्ष के लिए चिंतन और व्यवहार में सामंजस्य की आवश्यकता पर बल दिया है ।